Pratidhwani the Echo
A Peer-Reviewed International Journal of Humanities & Social Science
ISSN: 2278-5264 (Online) 2321-9319 (Print)
***Impact Factor: 6.28** (Index Copernicus International)*
Volume-X, Issue-III, April 2022, Page No.125-131
Published by Dept. of Bengali, Karimganj College, Karimganj, Assam, India
Website: http://www.thecho.in

कालिदास की कृतियों में माननीय स्वभाव की कुछ विशिष्ट प्रवृत्तियाँ

डॉ. अर्चना पाल

एसो. प्रोफेसर एवं अध्यक्षा संस्कृत विभागए आर.सी.ए. गर्ल्स (पी.जी.) कॉलेज, मथुरा

Abstract

Kalidas is regarded as the greatest known sanskrit dramatist and poet. His poetry skills have been appreciated by not only Indian but western critics. He has done microscopic illustration of human nature in his masterpieces. Human life passes through various stage, from birth to death, that effects his psychology It is expected of a great poet, that he has wide knowledge on various subjects. Kalidas was perfect in this aspect. Like a psychologist, he tried to understand the mentality of different human brings living in different conditions.

Key Words – Desolation, Affectionateness, Fear of evil, Jealousy, Tendency to cast doubt about success

प्रस्तावना – कालिदास ने अपनी कृतियों में कुछ ऐसी प्रवृत्तियों को प्रस्तुत किया है जो सभी मानवों में देखी जाती हैं, चाहे वह भारत में रहने वाला व्यक्ति हो अथवा संसार के किसी भी अन्य देश में रहने वाला व्यक्ति हो। कुछ ऐसी ही मानव स्वभाव की प्रवृत्तियाँ यहाँ उल्लिखित हैं –

1. अच्छी प्रकार से शिक्षित व्यक्तियों का भी अपने विषय में अविश्वासी होना

यह एक सामान्यतया पाई जाने वाली मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति है कि कोई व्यक्ति चाहे कितना भी अधिक शिक्षित हो उसे अपने प्रदर्शन के विषय में सन्देह बना रहता है। यह बात सार्वजानिक रूप से प्रदर्शन करने वाले कलाकारों (जैसे संगीतकार, नृत्यकार, नाटककार, अभिनेता आदि) के विषय में विशेष रूप से लागू हेाती है। किसी विषय की शिक्षा लेना अलग बात है और उसका उत्तम रूप में प्रदर्शन करना अलग बात है। जिस कलाकार में दोनों बातें पाई जाती हैं, वह ही उत्तम कलाकार होता है।

अच्छी प्रकार से शिक्षित व्यक्तियों का भी अपने विषय में अविश्वासी होने के स्वाभाविक मनोभाव को कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तलम् के प्रथम अंक में बड़े स्पष्ट रूप में प्रदर्शित किया है।

नाटक के प्रारम्भ में सूत्रधार नटी से कहता है कि आज हमें महाकवि कालिदास द्वारा रचित अभिज्ञानशकुन्तलम् नाम के एक नये नाटक का अभिनय करना है। इसलिये प्रत्येक पात्र के द्वारा अच्छा अभिनय कराने का यत्न किया जाना चाहिये। इस पर नटी कहती है कि अभिनय कार्य के आपके द्वारा अच्छी प्रकार से व्यवस्थित किये जाने के कारण कोई कमी नहीं रहेगी।

तब सूत्रधार कहता है कि आर्ये में तुमसे सच कहता है –

आ परितोषाद् विदुषां व साधु मन्ये प्रयोगविज्ञावम्।
बलवदपि शिक्षिता शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः।। (अवि० 1.2)

''जब तक विद्वानों को सन्तोष न हो जाये मैं अपने अभिनय कौशल को अच्छा नहीं मानता। अच्छी प्रकार से शिक्षित व्यक्तियों का भी चित अपने विषय में अविश्वासी होता है''।

''अच्छी प्रकार से शिक्षित व्यक्तियों का भी चित अपने विषय में अविश्वासी होता है'' यह बात सभी प्रकार के सार्वजानिक रूप से प्रदर्शन करने वाले कलाकारों पर लागू होती है, यहाँ तक कि अध्यापकों और प्राध्यापकों पर भी लागू होती है। कोई अध्यापक चाहे कितना भी शिक्षित हो, बहुत सी बड़ी–बड़ी उपाधियाँ धारण किये हुए हो, उसे भी अपने विषय में यह सन्देह बना रहता है कि वह अपने छात्रों को अच्छी प्रकार से सन्तुष्ट कर पायेगा अथवा नहीं। सन्देह की इस मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति को कालिदास ने सुचारू रूप से प्रस्तुत किया है।

आजकल भी बहुधा बहुत से कलाकारों को अपने प्रदर्शन के विषय में सन्देह प्रकट करते हुए देखा जाता है। अमिताभ बच्चन एक अत्यन्त उत्कृष्ट अभिनेता के रूप में अनेक दशकों तक फिल्म–जगत् में छाये रहे। कई वर्षों तक फिल्मों से बाहर रहने के पश्चात जब उन्होंने पुनः अभिनय के क्षेत्र में प्रवेश करने का निश्चय किया तो उनकी एक फिल्म के मुहूर्त के अवसर पर एक पत्रकार ने उनसे पूछा कि चार साल के अन्तराल के पश्चात् अभिनय के क्षेत्र में पुनः आते हुए आप कैसा अनुभव कर रहे हैं, तो उनका उत्तर था ''बहुत घबराहट हो रही है।'' अमिताभ बच्चन का बहुत घबराहट होने का मनोभाव कालिदास के द्वारा वर्णित उपर्युक्त मनोभाव से कितना मिलता है। वस्तुतः अमिताभ बच्चन के मन में यही सन्देह रहा होगा कि अब भी मैं अपने अभिनय के द्वारा दर्शकों को सन्तुष्ट कर पाऊँगा, अथवा नहीं। बहुत से अभिनेता, निर्देशक और फिल्म–निर्माता अपने कार्यों में सफलता के प्रति सन्देह का इसी प्रकार का मनोभाव प्रकट करते रहे हैं।

सफलता के विषय में सन्देह बन रहने की प्रवृत्ति का उल्लेख कालिदास ने मालविकाग्निमित्रम् नाटक में भी किया है। राजा अग्निमित्र का विचार है कि यद्यपि विदूषक ने मालविका की प्राप्ति के लिए पक्का उपाय कर रखा है तथापि जब तक मालविका की प्राप्ति ना हो जाए, उसका हृदय शङ्कालु ही रहेगा। वह कहता है –

इष्टाधिगमनिमित्तं प्रयोगमेकान्तसाध्यम मत्वा।
सन्दिग्धमेव सिद्धौ कातरमाशङ्कते चेतः।। (मालवि० 4.5)

''मन–चाही वस्तु की प्राप्ति के लिये किये जाने वाले उपाय को अच्छी तरह पक्का मानकर भी हृदय उसकी सफलता पर सन्देह ही करता है और अधीर बनकर डरता ही रहता है।''

3. प्रिय के चले जाने पर सूनापन प्रतीत होना

वह मानव–मनोविज्ञान का एक मार्मिक सत्य है कि जब कोई प्रिय बाहर चला जाता है तो साथ में रहने वाले अन्य स्नेही व्यक्तियों को वह स्थान सूना–सा लगने लगता है। परिवार में यह स्थिति बहुधा होती है। माँ–बाप अपने प्रिय बेटे या बेटी के चले जाने पर, भाई या बहिन अपने प्रिय भाई या बहिन के चले जाने पर, पति या पत्नी अपनी प्रिय पत्नी या पति के चले जाने पर ऐसा अनुभव करते हैं। सूनापन उसी के जाने पर अनुभव होता है, जिससे स्नेह हो।

कालिदास ने इस मनोवैज्ञानिक सत्य को अभिज्ञानशाकुन्तलम् के चतुर्थ अंक में बड़े प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। जब कण्व ऋषि तथा अनसूया और प्रियंवदा शकुन्तला को हस्तिनापुर जाने के लिये गौतमी, शाङ्र्गरव और शारद्वत के साथ विदा कर देते हैं तो कण्व ऋषि अनसूया और प्रियंवदा से कहते हैं कि तुम्हारी सहधर्मचारिणी तो चली गई। अब शोक पर नियन्त्रण करके मेरे साथ आश्रम में चलो। तब अनसूया प्रियंवदा कहती हैं – **शकुन्तला विरहितं शून्यमिव तपोवनं कथं प्रविशावः–** ''शकुन्तला से विरहित इस सूने से तपोवन में कैसे प्रवेश करें''। तब कण्व ऋषि कहते हैं – **स्नेहप्रवृत्तिरेवंदर्शिनी** – ''स्नेह का भाव ऐसा अनुभव कराने वाला है'' अनसूया और प्रियंवदा तथा कण्व ऋषि के ये कथन कितने वास्तविक मनोवैज्ञानिक सत्य को उद्घटित करने वाले हैं। वस्तुतः सूनापन प्रतीत होने के मूल में स्नेह ही होता है। जिससे स्नेह होता है उसके जाने से सूनेपन की प्रतीति होती है। जिससे स्नेह नहीं होता उसके चले जाने पर सूनापन प्रतीत नहीं होता है, अपितु अच्छा लगता है। यदि कोई सामान्य रूप से परिचित व्यक्ति घर पर आकर कई दिन ठहर जाता है तो परिवार के सदस्य उससे ऊबने लगते है और यह चाहने लगते हैं कि यह शीघ्र चला जाये। उससे पर्याप्त स्नेह न होने के कारण ही ऐसी प्रतीति होती है।

4. स्नेह के कारण अनिष्ट की आशंका

जिस व्यक्ति के प्रति हमें स्नेह होता है, किन्हीं परिस्थितियों में उसके अनिष्ट की आशंका होने लगती है। स्नेह के कारण अनिष्ट की आशंका होने के मनोभाव को कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तलम् के चतुर्थ अंक में प्रकट किया है। जब कण्व ऋषि के आश्रम से शकुन्तला की हस्तिनापुर जाने के लिये विदाई होती है, शकुन्तला अपनी दोनों सखियों (अनसूया और प्रियवंदा) से गले लगकर मिलती है। ये दोनों सखियाँ उससे कहती हैं कि यदि वह राजा (दुष्यन्त) तुम्हें पहिचानने में शिथिलता दिखलाये तो तुम उसके नाम से अंकित अंगूठी दिखा देना। इस पर शकुन्तला अपनी दोनों सखियों से कहती है कि तुम दोनों के इस सन्देह से तो मैं कांप गई हूं। तब दोनों सखियाँ कहती हैं, कि तुम डरो मत – **स्नेहः पापशंकी**– ''स्नेह अनिष्ट की आशंका कराने वाला होता है,'' अर्थात् जिसके प्रति स्नेह होता है उसके विषय में भिन्न–भिन्न प्रकार की आशंकायें होने लगती हैं– कहीं ऐसा न हो जाये, कहीं वैसा न हो जाये, आदि। जिसके प्रति स्नेह नहीं होता उसके विषय में तो सोचने की आवश्यकता ही नहीं होती।

स्नेह के कारण अनिष्ट की आशंका की अनुभूति सामान्य जीवन में भी होती रहती है। यदि घर का कोई सदस्य बाजार में कोई सामान लेने के लिये अथवा किसी ऐसे काम से भेजा गया हो, जिसमें अधिक से अधिक एक घण्टा लग सकता है, किन्तु यदि वह चार घण्टे तक भी लौटकर न आये तो घर के सदस्यों को अनिष्ट की आशंका होने लगती है। यह सोचा जाने लगता है कि कहीं कोई दुर्घटना न हो गयी हो। घर के लोगों में उसके प्रति स्नेह के कारण ही उसके विषय में अनिष्ट की आंशका होती है। यह एक सामान्य मनोवैज्ञानिक सत्य है। इसका अनुभव कालिदास ने भी किया था। इसी कारण अपनी रचना (अभिज्ञानशाकुन्तलम्) में भी इसे प्रस्तुत किया।

6. एक–सी विद्या वालों में ईर्ष्या–भाव

एक–सी विद्या वाले व्यक्तियों में बहुधा परस्पर ईर्ष्याभाव होता है। एक ही विषय के जाने–माने दो विद्वान् एक–दूसरे के दोष निकालते हैं, एक–दूसरे की प्रतिष्ठा को नहीं सहन कर पाते, एक अपने को दूसरे से बढ़कर समझता है, इस प्रकार की प्रवृत्ति सामान्यतया देखी जाती है। विद्वानों के इसी मनोभाव को कालिदास ने मालविकाग्निमित्रम् नाटक में प्रकट किया है। राजा अग्निमित्र के संरक्षण में

गणदास और हरदत्त दो नाट्याचार्य हैं, जो एक दूसरे में दोष निकालते हैं। एक अपने को दूसरे से बढ़कर समझते है। इन्हीं के सन्दर्भ में राजा अग्निमित्र कहते हैं–

प्रायः समानविद्याः परस्परयशःपुरोभागाः (मालवि० **१.२०**)– ''जिनमें एक–सी विद्या होती है, वं प्रायः एक–दूसरे की प्रतिष्ठा को न सहन करने वाले होते हैं।''
परस्पर ईर्ष्याभाव की प्रवृत्ति विद्वानों में सर्वत्र पाई जाती है, यह एक व्यापक प्रवृत्ति है।

11. स्नेही लोगों में बंटे हुए दुःख का सहन करने योग्य वेदना वाला होना

जब कोई व्यक्ति दुःख में पड़ा हुआ है तो उसके स्नेही जन, जैसे परिवार के व्यक्ति अथवा मित्र उसे दुःख से उबारने का प्रयत्न करते हैं, ऐसे उपाय ढूँढ़ते हैं, जिससे वह दुःख से उबर सके। इससे दुःखी व्यक्ति को ऐसा लगता है कि उसका दुःख परिवारीजनों अथवा मित्र आदि द्वारा बांट लिया गया है और उसे दुःख की वेदना तीव्र नहीं प्रतीत होती, अन्यथा अकेले दुःखग्रस्त होने पर उसे दुःख की तीव्र अुनभूति होती है। वस्तुतः स्नेही लोगों द्वारा वार्तालाप किये जाने पर अथवा दुःख के निवारण के उपाय ढूँढे जाने पर दुःखी व्यक्ति का ध्यान दुःख से हटा रहता है और वह मानसिक तौर पर राहत का अनुभव करता है। ''स्नेही जनों में बंटा हुआ दुःख सहन करने योग्य वेदना वाला हो जाता हैं'', इस मनोवैज्ञानिक सत्य को कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तलम् के तीसरे अंक में प्रकट किया है।
जब शकुन्तला की सखियां अनसूया और प्रियंवदा यह देखती हैं कि वह प्रतिदिन क्षीण होती जा रही है और किसी सन्ताप से ग्रस्त है तो वे उससे उसके सन्ताप का कारण पूछती हैं। वे उससे कहती हैं– **स्निग्धजनसंविभक्तं हि दुःखं सह्यवेदनं भवति**– ''स्नेही जनों से बांटा हुआ दुःख सहन करने योग्य वेदना वाला हो जाता है।'' तब शकुन्तला बतलाती है कि जब से राजर्षि दुष्यन्त को उसने देखा है, उसके प्रति आकर्षण के कारण उसकी यह अवस्था हो गयी है। इसी के पश्चात् वे दोनों सखियाँ शकुन्तला का दुष्यन्त से मिलन कराने का यत्न करती हैं।

स्वजनों के सामने दुःखी व्यक्ति के दुःख की स्थिति किस प्रकार की हो जाती है, इसका कालिदास ने कुमारसम्भवम् महाकाव्य में भी वर्णन किया है। जब व्याकुल रति को आश्वासन देन के लिये वसन्त ने अपने आप को उसके सामने प्रकट कर दिया तो रति और अधिक रोने लगी, छाती पीटने लगी। इस अवस्था को दृष्टि में रखकर कालिदास ने उल्लेख किया है – **स्वजनस्य हि दुःखमग्रतो विवृतद्वारमिवोपजायते।** (कुमार० 4.26)
''स्वजन के सामने दुःख खुले हुये द्वार वाला सा हो जाता है।'' अर्थात् दुःख खुलकर अतिशयित रूप में प्रकट हो जाता है।

निष्कर्ष – यहाँ कालिदास की कृतियों में उल्लिखित कुछ विशिष्ट मानवीय स्वभाव की प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में विचार किया गया है और ये प्रवृत्तियाँ सार्वभौम तथा सार्वकालिक हैं। इनसे प्रकट होता है कि मानवीय स्वभाव की मूल प्रवृत्तियों को कालिदास ने कितनी गहराई से समझा है और इन कृतियों के अनुशीलन से कालिदास एक मनोवैज्ञानिक के रूप में भी हम पाठकों के सामने हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

1. अभिज्ञान शाकुन्तलम् – सं० डॉ० कपिलदेव द्विवेदी, पंचम संस्करण, 1969, रामनारायण लाल, बेनी माधव, इलाहाबाद।
2. कालिदास – ग्रन्थावली – सं० सीताराम चतुर्वेदी, तृतीय संस्करण सं० 2019 वि०

3. कुमारसम्भवम् महाकाव्य – सं० एवं व्याख्याकार पं० शेष राज शर्मा रेग्मी, प्रथम संस्करण 1987, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।
4. मालविकाग्निमिहम् – व्याख्याकार डॉ० रमाशंकर पाण्डेय, तृतीय संस्करण, 1980, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
5. मेघदूतम् – सं० डॉ० संसार चन्द्र तथा पं० मोहनदेवं पतु अष्टम संस्करण, 1983, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
6. रघुवंशम् – व्याख्याकार डॉ० श्री कृष्णमणि त्रिपाठी, तृतीय संस्करण, 1983, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
7. विक्रमोर्वशीयम् – सं० पं० श्रीरामचन्द्र मिश्र, चतुर्थ संस्करण, 1983 चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन, वाराणसी।